International Journal of Research
Special Issue for Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 02 Issue 13
December 2015

सूत्रकालीन भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण

डॉ. राकेश कुमार
इतिहास विभाग

शोध–आलेख सार – वस्तुतः सूत्र ग्रन्थों की गणना वैदिक साहित्य में ही की जाती है और उपनिषद युग के अन्तिम चरण में ही सूत्र साहित्य की रचना प्रारम्भ हो चुकी थी, फिर भी इस साहित्य को उतना महत्व नहीं दिया गया जितना संहिता अथवा ब्राह्मण ग्रन्थों को दिया गया है। चूंकि सूत्र साहित्य भारत के विभिन्न भागों में रचा गया है। अतः इसका रचनाकाल भी अलग–अलग है और इसमें विभिन्न कालों व विभिन्न भागों का चित्र प्रस्तुत है। अधिकांश साहित्यकारों के अनुसार सूत्र साहित्य की रचना ईसा पूर्व सातवीं सदी से ईसा की दूसरी सदी तक हुई है। जिस समय सूत्रों की रचना हो रही थी तो उसी समय बौद्ध साहित्य भी रचा गया। बौद्ध साहित्य में जातक कथाओं का विशेष महत्व है। बौद्ध धर्म के साथ ही भारत में अन्य धर्मों का भी प्रचार–प्रसार हुआ परन्तु उनमें से अधिकांश सम्प्रदायों का साहित्य उपलब्ध नहीं है। इस सन्दर्भ में जो भी सामग्री उपलब्ध है, उसी से सूत्रकालीन भारतीय समाज का विश्लेषण किया जा सकता है। प्रस्तुत शोध पत्र में सूत्रकालीन भारतीय समाज के बारे में एक विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

मूलशब्द– वैदिक साहित्य, उपनिषद, सूत्र ग्रन्थ, ब्राह्मण ग्रन्थ, वर्ण व्यवस्था, संस्कार।

भूमिका– चूंकि वैदिक युग का विचार धीरे–धीरे क्षीण होता गया और वर्ण व्यवस्था उत्तर वैदिक काल में अधिक स्पष्ट हो गई तथा सूत्र युग में आकर अत्याधिक कठोर बन गई। इस समय ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, ये तीनों एक ही संस्कृति में पल रहे थे। परन्तु शूद्रों को अलग रखा गया था तथा उन्हें वेदों का अध्ययन करने का अधिकार नहीं दिया गया था। धर्म सूत्रों के अध्ययन से यह स्पष्ट है कि सभी लोग अपने वर्ण पेशें के अनुसार

International Journal of Research
Special Issue for Hindi Papers
Available at https://edupediapublications.org/journals
e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 02 Issue 13
December 2015

जीविकोपार्जन करने में असमर्थ थे। ब्राह्मण ग्रन्थों में शूद्रों का कार्य केवल सेवा करना बताया गया। उत्तर वैदिक युग से ही शूद्रों की भी तीन शाखाऐं हो गई।

धर्म सूत्र के युग में शूद्रों की स्थिति सबसे हीन मानी गई और उनके सामने अनेक सामाजिक असुविधाएं उत्पन्न हो गई। जिस अपराध के लिए ब्राह्मण अदण्डनीय माना जाता था उसी के लिए शूद्रों को कठोर दण्ड भुगतना पड़ता था।[1] शूद्रों में से कुछ की स्थिति अत्यन्त दयनीय थी और उन्हें गाँव के बाहर रहना पड़ता था। गौतम सूत्र से ज्ञात होता है कि शूद्रों को भी विभिन्न प्रकार से धन इक्टठा करने का अधिकार था। तत्कालीन साहित्य से पता चलता है कि कुछ शूद्र तो इतने धनवान थे कि वे ब्राह्मणों को भी अपने यहाँ नौकरी देते थे।[2]

धार्मिक क्षेत्र में कुछ शूद्र लोग अपने घरों में यज्ञ और श्राद्ध करने के लिए स्वतंत्र थे। श्रौत सूत्र में कुछ ऐसे यज्ञों का भी उल्लेख है जो केवल शूद्रों की मदद से होते थे। यज्ञ में विधिवत मन्त्र सहित शूद्रों को भाग लेना पड़ता था। वास्तव में सूत्र युग में शूद्रों के उत्पीड़न की जो कल्पना की जाती है, वह पूर्ण रूप से सत्य नहीं है।

विवाह व्यवस्था– सूत्रकाल में विवाह प्रथा जीवन का आवश्यक अंग थी। धर्मसूत्रों में सन्यास आश्रम से अधिक महत्व गृहस्थ आश्रम को दिया गया है। धर्म सूत्रों के अनुसार मनुष्य पर तीन प्रकार के ऋण माने गए– ऋषि ऋण, पितृ ऋण और देव ऋण। सन्तानोत्पति के बाद पितृ ऋण से मुक्ति संभव है। धर्म सूत्रों के अनुसार विवाह ऐसा शर्तनामा नहीं है जिसे इच्छानुसार भंग किया जा सके। धर्मसूत्रों के युग में विवाह कई प्रकार के थे। इसमें आठ प्रकार के विवाह का वर्णन किया गया है। इस समय ऐसी मान्यता थी कि विवाह जितना शुद्ध और पवित्र संस्कार से होगा तो सन्तान भी उतनी

[1] गौतम सूत्र, 12–1–10.
[2] बौद्धायन धर्म सूत्र, 2–1–1–2.

तेजस्वी होगी।[3] यह आठ विवाह ब्राह्म, दैव, प्राजापत्य, आर्ष, गन्धर्व, आसुर, राक्षस, और पैशाच थे। आवस्तम्ब और वशिष्ठ धर्म सूत्रों में प्राजापत्य और पैशाच विवाह विधि का उल्लेख नहीं है। इनमें केवल 6 प्रकार के विवाह का वर्णन है।

धर्म सूत्रों में इस बात का उल्लेख है कि कन्याओं का विवाह ऋतुमति होने के शीघ्र बाद किया जाना चाहिए। बौद्धायन और वशिष्ठ के अनुसार ऐसी कन्या का विवाह अधिक से अधिक तीन वर्ष तक रोका जा सकता है। सूत्रकालीन आचार्यों के अनुसार स्वर्ण विवाह को उत्तम माना गया है। महाभारत काल में भी 16 वर्ष की आयु को विवाह योग्य बताया गया है। सभी धर्म सूत्रों में सगोत्र तथा एक ही प्रकार के वर–कन्या विवाह को निषेध किया गया है। वर–वधू के चुनाव के समय गुण और मांगलिक लक्षणों की खोज को प्राथमिकता देने की बात भी की गई है।

धर्म शास्त्रों के अनुसार सम्बन्ध–विच्छेद भी कुछ परिस्थितियों में स्त्रियों को भी दिया गया था। धर्मसूत्रों के अनुसार यदि कोई पुरूष किसी अन्य स्त्री के पास चला गया हो और उसके वापिस आने की संभावना न हो तो विवाहिता स्त्री को 5 वर्ष तक उसकी प्रतीक्षा करनी चाहिए। इसके बाद स्त्री को उसी परिवार या उसी गौत्र में अन्य पुरूष से विवाह करने का अधिकार था।

संस्कार विधि– वैदिक युग में संस्कारों का बहुत महत्वपूर्ण स्थान था। धर्मसूत्रों के काल में तो मनुष्य का सारा जीवन संस्कारों से भरा हुआ था और उम्र के हर पड़ाव पर कोई न कोई संस्कार होता रहता था। प्राचीन गृह सूत्रों में उपनयन, विवाह आदि कर्मों को संस्कार की श्रेणी से बाहर रखा गया है। पराशर की गृह सूत्र, आपतस्तम्भ धर्म सूत्र तथा जैमिनी की पूर्व मीमांसा को उपनयन को संस्कारों की श्रेणी में रखा गया है। धीरे–धीरे गृहस्थों के यहां होने वाले यज्ञ, उत्सवों के लिए संस्कार शब्द के रूप में प्रयुक्त होने लगे

[3] मिथिलाशरण पाण्डेय, प्राचीन भारत की सामाजिक संस्थाएं, पृ0 44.

और संस्कारों की संख्या बढ गई। गौतम धर्म सूत्र के अनुसार मानव जीवन में चालीस संस्कार होते हैं। वैखानस धर्म सूत्र में 18 शरीर सम्बन्धी और 22 यज्ञ सम्बन्धी संस्कार बताये गए हैं।[4] इन संस्कारों के नाम हैं– गर्भाधान, पुंसवन, सीमत्तोनयन, जातकर्मन, नामकरण, अन्नाप्राशन, चौल, केशान्त, उपनयन, उपकर्मन, अथवा उपकरण, उत्सर्ग अथवा उत्सर्जन, वेद–व्रत, समावर्तन, विवाह, देवप्रज्ञ, पितृयज्ञ, मनुष्ययज्ञ, भूतयज्ञ, ब्रह्मायज्ञ, अष्टका, प्रवणस्थालीपाक, श्राद्ध, श्रावणी, अग्रहायणी, चैत्री, अश्वपूंजी, अगन्याधेय, अग्निक्षेत्र, दर्शपूर्णभास, आग्रयण, चतुर्भास्य, निरूढपशबुन्ध, सौत्रामणी, अग्निष्टोम, अत्यश्निष्येम, उक्थ्य, षोडश्नि, बाजपेय, आतित्श और अपतोर्याम।

महिलाओं की स्थिति– इस काल में वैदिक युग की तरह संयुक्त परिवार थे। परिवार में घर के स्वामी, पत्नी, भाई–बहन, लड़के तथा माता–पिता शामिल थे। गृह सूत्रों में कहा गया है कि पिता की मृत्यु के बाद बड़ा बेटा ही परिवार का भार संभालता था। परिवार में पुत्र को पुत्री की तुलना में अधिक प्रिय माना जाता था। इस युग में स्त्रियों की स्थिति फिर भी अधिक हीन नहीं थी। जिन लोगों को तर्पण दिया जाता था उनमें स्त्रियां भी होती थी। यशस्वी स्त्रियों का स्थान तत्कालीन ऋषियों से कम नहीं था। इस युग में एक विवाह की परम्परा मान्य थी और श्राद्धों के अवसर पर भी प्रायः एक ही पत्नी का उल्लेख आता है। इस युग में गणिकाओं का भी उल्लेख है। श्रौत सूत्रों में इन्हें पुश्चली कहा गया है। बौद्धयन सूत्र के अनुसार गणिकाओं का दिया हुआ भोजन नहीं करना चाहिए।[5] इससे स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समाज में उन्हें हेय दृष्टि से देखा जाता है। इस युग में सती प्रथा का प्रचलन नहीं था। धर्म सूत्रों से स्पष्ट है कि पति की मृत्यु के बाद स्त्रियां बहुत कम दिनों तक जीवित रहती थी। भारद्वाज गृह सूत्र में कहा गया है कि पति की मृत्यु के बाद पत्नी को गृह अग्नि को प्रज्वलित रखना चाहिये। केवल विष्णु

[4] मिथिलाशरण पाण्डेय, प्राचीन भारत की सामाजिक संस्थाएं, पृ0 49.
[5] बौद्धायन धर्म सूत्र, 3–6–6–10.

धर्म सूत्र में लिखा गया है कि पति की मृत्यु के बाद स्त्रियों को शुद्ध जीवन जीना चाहिये या पति के साथ ही जल जाना चाहिये। इस समय पत्नी पुनर्विवाह कर सकती थी, क्योंकि सूत्र ग्रन्थों में किसी भी स्त्री को विधवा का जीवन जीने का आदेश नहीं है। गौतम सूत्र में कहा गया है कि यदि विधवा स्त्री पुत्रहीन हो तो वह अपनी इच्छा से देवर के साथ संतानोत्पति कर सकती है। इस समय पर्दाप्रथा नहीं थी और स्त्रियां सामाजिक और धार्मिक उत्सवों में खुलकर भाग लेती थी। उन्हें यज्ञ कार्य में भी भाग लेने का अधिकार मिला हुआ था।

उतराधिकार व्यवस्था– सूत्रों में उतराधिकारी व्यक्ति के बारे में मतभेद है, क्योंकि सूत्र ग्रन्थों की रचना विभिन्न कालों में हुई है। काल विभिन्नता और स्थान विभिन्नता के कारण प्रचलित मान्यताओं के चलते ऐसा मतभेद होना स्वाभाविक माना जाता है। सूत्र ग्रन्थों और स्मृतियों के अनुसार 12 प्रकार के पुत्र माने गए हैं। आपस्तम्ब सूत्र के अनुसार औरस पुत्र का अधिकार सबसे अधिक माना गया हैं उसके बाद क्षत्रेज पुत्र का स्थान आता है जिसे स्त्री नियोग द्वारा देवर से उत्पन्न करती थी। तीसरे स्थान पर पुत्रिका–पुत्र का स्थान है। मनु ने उसका स्थान औरस पुत्र के बराबर माना है।[6] कुछ स्थानों पर अनुचित सम्बन्धों के कारण उत्पन्न पुत्रों का भी उल्लेख है, जिन्हें गुढन कहा जाता था और ऐसे पुत्र भी अपनी माता की सम्पति के अधिकारी होते थे। जो पुत्र कुमारी कन्याओं से उत्पन्न होते थे उन्हें कानीन कहा जाता था। इस समय दत्तक व्यवस्था भी प्रचलित थी। यदि कोई ब्राह्मण कामुकतावश किसी शूद्र स्त्री से पुत्र उत्पन्न करता था तो उसे शौद्र कहा जाता था।

दास प्रथा– चूंकि सूत्र ग्रन्थों में दासों की प्रथा पर अधिक प्रकाश नहीं डाला गया है फिर भी कई ऐसे साक्ष्य हैं जिनसे यह स्पष्ट होता है कि तत्कालीन समय में दास प्रथा

[6] मनुस्मृति, 19, 131–140.

किसी न किसी रूप में विद्यमान थी। जिस समय सूत्रों की रचना हो रही थी तो वह समय आर्थिक दृष्टि से काफी महत्वपूर्ण था। कृषि, व्यापार तथा उद्योग–धन्धों के विकास के लिए दासों की आवश्यकता पड़ती थी। छोटे–छोटे किसान भी खेतों में काम करवाने के लिए दासों को रखते थे। दासों का प्रमुख काम था– भोजन बनाना, पानी भरना, चावल कूटना, गेंहू पीसना, खेतों पर भोजन ले जाना और उसकी रखवाली करना, भिक्षा देना, घरेलू काम करना, स्वामी के सो जाने पर उसकी सेवा करना, थूकदानी साफ करना, भोजन के समय पंखा झलना आदि। दासों की स्थिति गृह स्वामी पर निर्भर थी। कई ऐसे भी उदाहरण हैं जब दासों को गृहस्वामी के लड़कों के साथ पढने का अधिकार भी दिया जाता था।

वेशभूषा व खानपान– इस युग में दो प्रकार की पोशाक पहनी जाती थी। एक अन्तरवास और दूसरी उतरीय। अन्तरवास कमर से बंधा होता था और उतरीय चादर की तरह लपेटना पड़ता था। पुरूष साफा बांधते थे। इसकी जगह स्त्रियां अपने सिर पर कुम्भ कुरीर धारण करती थी जो एक प्रकार का आभूषण था। सूत्रों में यज्ञ के अवसर पर स्यामूल पहनने का नियम था। स्त्री तथा पुरूष दोनों सोने तथा अन्य धातुओं के आभूषण पहनते थे। लोग फूलों से बनी माला पहनते थे तथा केश संवारते थे।

इस युग में सब्जी, दूध, दही, घी, मक्खन आदि लोगों का भोजन था। खाद्यानों में गेंहू, जौं, बाजरा, तिल तथा दालें शामिल थी। बौद्ध साहित्य और सूत्रों से ज्ञात होता है कि लोग सत्तू खाना जानते थे। पाणि ने लिखा है कि सत्तू पानी के साथ मिला कर खाया जाता था। इन सबके अतिरिक्त तिलकुट और पीठा अमीर लोगों के भोजन थे। सूत्र ग्रन्थों से पता चलता है कि लोग मांस भी खाते थे। महावग्ग से पता चलता है कि भिक्षु लोग भिक्षा में मांस भी स्वीकार करते थे।[7] धर्मसूत्रों से पता चलता है कि सुरापान

[7] माहवग्य सूत्र, 6–73–10, 15।

भी किया जाता था। धर्मसूत्रों में कहा गया है कि स्त्री पितरों को भी सूरा प्रदान करना चाहिए।

ये लोग संगीत, नृत्य, नाटक, रथ चालन, मेला, कथा–कहानी आदि रूप में मनोरंजन के साधनों के लिये प्रयोग करते थे। बौद्धायन धर्म सूत्र में नाटक करने वाले तथा अभिनय कला में शिक्षा देने वालों का उल्लेख है।

सारांश– इस तरह सूत्रकालीन भारतीय समाज के बारे में सूत्र ग्रन्थों के आधार पर उपलब्ध जानकारी पर अधिक विश्वास नहीं किया जा सकता क्योंकि इसमें एकरूपता का अभाव है। इससे भारतीय समाज को चित्र उभरता है, वह काल विभिन्नता लिए हुए है। इसके अतिरिक्त सूत्र साहित्य की प्रासांगिकता पर भी सवाल किये जाते रहे हैं। फिर भी सूत्रकालीन भारतीय समाज भी अन्य समाजों की तरह अपनी कुछ विशेषताएं लिए हुए है जो भारत के प्राचीन सामाजिक जीवन को स्पष्ट करती हैं।

सन्दर्भ सूची–

1. शिवदत्त ज्ञानी, वेदकालीन समाज , चौखम्बा प्रकाशन, वाराणासी, 1967.
2. भरतलाल चतुर्वेदी, महाभारतकालीन समाज व्यवस्था, विद्या प्रकाशन, नई दिल्ली, 1981.
3. द्विजेन्द्र नारायण झा, प्राचीन भारतः सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विकास की पड़ताल, ग्रन्थ शिल्पी, दिल्ली, 2000.
4. सुमन गुप्ता, प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, स्वामी प्रकाशन, जयपुर, 2000.
5. मिथिलाशरण पाण्डेय, प्राचीन भारत की सामाजिक संस्थाएं, ज्ञानंदा प्रकाशन, नई दिल्ली, 2004.
6. डी.एन.झा, प्राचीन भारतः एक रूपरेखा, मनोहर पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2005.
7. प्रशान्त गौरव, प्राचीन भारत, लगभग 600ई0 तक, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009.
8. कैलाश खन्ना, प्राचीन भारत का इतिहास, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2010.

e-ISSN: 2348-6848
p-ISSN: 2348-795X
Volume 02 Issue 13
December 2015

9. रणवीर चक्रवर्ती, भारतीय इतिहास का आदिकाल– प्राचीनतम पर्व से 600 ई0 तक, ओरियंट ब्लैकस्वॉन, नई दिल्ली, 2012.
10. गजानन माधव मुक्तिबोध, भारतः इतिहास और संस्कृति, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014.